....संगत साधु की

(एक फ्रेंच युवक के लगभग दो दशकों तक भारत में साधुओं के साथ बिताए अंतरंग सहवासों का रोचक वृतान्त)

पैट्रिक लेवी

डायमंड बुक्स

SMS New Hindi at 9911044500 for Alert

ISBN : 978-81-288-3837-8
© लेखकाधीन
प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II
नई दिल्ली-110020
फोन : 011-40712200
ई-मेल : sales@dpb.in
वेबसाइट : www.diamondbook.in
संस्करण : 2012
मुद्रक : जी.एस. इन्टरप्राइजिज
अनुवाद: बी. के. चतुर्वेदी

SANGAT SADHU KI
By Patrik Lavi

दो शब्द

इस पुस्तक के लिए लोगों का साक्षात्कार लेते हुए प्राय: मुझसे यही प्रश्न पूछा जाता था "कि क्या मैं उनके सही नामों का उल्लेख करूँगा?" साक्षात्कार के लिए राजी होने के पूर्व यही प्रश्न ज्यादातर लोगों ने पूछा। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि मैं उनके सही नामों का उल्लेख नहीं करूँगा। इसलिए इस पुस्तक में जगह और लोगों के नाम कहीं सच हैं और कहीं काल्पनिक–यदि इत्तफाक़न कोई नाम सही होता है तो यह एक तुक्का ही होगा, मंशा नहीं।

-पैट्रिक लेवी

प्रस्तावना

कहा जाता है कि बहुत समय पूर्व तुपुल नामक एक महान राजा थे जो बड़े धर्म परायण न्याय प्रिय, ब्राह्मणों के प्रति उदार, बुद्धिमानों की कदर करने वाले एवं बच्चों से प्रेम करने वाले थे। वे अपना राज्य बड़ी योग्यता से चलाते थे।

एक दिन उन्हें शिकार खेलते हुए रात हो गई और वे अपने पार्षदों से बिछड़ गए। रास्ता भूल कर वे भटकने लगे।

भोर के समय उन्होंने देखा कि वह एक कुटियानुमा मकान के सन्मुख हैं। जिसके सामने एक अछूत मरे हुए बैल से खाल उतार रहा है। वहां स्वयं को पाकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। वह यह पूछने वाले ही थे कि वह कहां है, किस प्रान्त या गांव में है, तभी उनकी निगाह एक बेहद रूपवती कन्या पर पड़ी। साधारण लगने वाली उस लड़की में बेहद आकर्षण और ठसक थी। उसे देखते ही राजा उसके प्रेम में पड़ गया।

जैसे मानो एक तीर अनन्त का भेदन करता हुआ तीव्र गति से जा रहा हो, राजा भी अपने शिकार, राज्य, शासन इत्यादि के बारे में सब कुछ भूल गया। उसका वहां ऐसा स्वागत हुआ जैसे वहां सब लोग उसका ही इंतजार कर रहे हों। उसने उस लड़की से ब्याह रचाया और वहीं मरे चमड़े का काम करते हुए उसी जंगल में खपरैल के मकान में सबके साथ रहने लगा। वहां एक भैंसों का तबेला था। भैंसों को सुबह चारे के लिए बाहर ले जाया जाता और दिन ढ़ले तबेले में वापस लाया जाता। उस छोटे से झोपड़ीनुमा मकान की हर बरसात में मरम्मत की जाती। अब राजा वहीं रहने लगा-वह सब कुछ भूल चुका था। वहीं के धन्धों में व्यस्त रहकर वह जंगल के देवताओं को गांव वालों के साथ पूजता और जूट की रस्सी से बंधी खाटों पर सोता। उसे वहां ऐसी शांति मिलती जैसे दिन भर काम में थकने के बाद रात को आराम से प्राप्त होती है। वह वहीं के जीवन में पूरी तरह घुल मिल गया था और अन्य गांव वालों की तरह अपने खेत जुतवाता तथा वर्षा का इन्तजार करता।

उसकी पत्नी के एक-एक करके तीन बच्चे-'लड़के' हुए, पर बड़ा लड़का बीमारी के कारण काल कलवित हो गया। उसके बाद उसका ससुर मरा जिसका खाल उतारने का काम उसके जिम्मे आया। फिर भयंकर अकाल के बाद सूखा पड़ा। उसके पश्चात इतनी जबरदस्त बाढ़ आई कि उसके सारे जानवर बह गए। एक बरसात में उसकी पत्नी भी एक झील में डूब कर मर गई। ऐसे ही समय गुजरता जा रहा था।

एक शाम, वह थक कर घास भरी जमीन पर सो गया। तभी उसे एक विचित्र सपना दिखा.... कि वह एक न्यायप्रिय राजा है जो राज्य कुशलता पूर्वक चला रहा है– तथा एक शाम वह शिकार खेलते हुए थक कर एक झोपड़ीनुमा मकान के सामने आता है-वहां उसे एक रूपवती लड़की दिखाई पड़ती है। वह उससे विवाह कर लेता है और मरे चमड़े का काम करने वाला हो जाता है। अपने ससुर की मृत्यु के पश्चात वह यह काम पूरी जिम्मेदारी से करने लगता है....फिर उसके बड़े बेटे की मृत्यु होती है... जानवर बाढ़ में बह जाते हैं और पत्नी एक झील में डूब कर मर जाती है....

एक दिन तभी उसका प्रधानमंत्री उसके सामने आकर उसके पैरों पर गिरता है : "हे महामहिम!... हम कब से आपकी तलाश कर रहे हैं। उत्तर-दक्षिण सब जगह आपको ढूंढा, हर प्रांत को छाना और छोटे-छोटे गांव को खंगाला... जंगल भी नहीं छोड़े... ईश्वर की अंतत: हम पर कृपा हुई कि आप हमें मिल ही गए!"

जब राजा अपने मंत्रियों और सैनिकों के साथ वापस अपने महल की तरफ लौट रहा था... तो उसने पाया कि वह तो अपने महल में बिस्तर पर पड़ा है।

तो यह सब एक सपना था?

यद्यपि यह था तो सपना परन्तु उसमें हकीकत की पूरी अनुभूति थी... पूरा जायका था वास्तविकता का-वही याद, वही अनुभव वही सच्चापन! अपनी नींद में भी वह पूरी तरह जागरूक रहा जैसा कि उसे अब महसूस हो रहा है!

तो उस क्षण वह कौन है? क्या महल वाला राजा या झोंपड़ी वाला चर्मकार? सपना कौन देख रहा है? वह चर्मकार राजा होने का या वह राजा चर्मकार होने का? या सुदूर ब्रह्माण्ड में कोई और जिसके बारे में वह सब कुछ भूल चुका है... तो क्या वह भैंसों का तबेला, वह उसकी चर्मकार की लड़की से शादी, उसके बड़े बेटे की मौत... पत्नी का डूबना- सब कुछ एक सपना ही था? क्या यह पिछले कुछ वर्ष सपने के कुछ घंटे मात्र ही थे? क्या समस्त जीवन अनन्त प्रवाह का एक क्षुद्र, अस्थायी अंश ही है? क्या हम सब किसी के सपने में आए विभिन्न किरदार ही हैं जिनका वास्तविक अस्तित्व नहीं है? यह कैसे पता चलेगा कि क्या सच है और क्या सपना? कब आदमी जागरूक व चेतन होता है? क्या सत्य भाग एक संशयों का पुलिन्दा है और विचार प्रवाह या सपनों के अनन्त प्रवाह का एक छुद्र हिस्सा है?....

दूसरे दिन सुबह वह राजा अपने महल में एक-एक पालकी में बाहर जा रहा था। उसको चार सुदृढ़ ब्राह्मण ढो रहे थे। उनमें से एक ठीक से ढो नहीं पा रहा था - दाएं-बाएं वह ठोकर खाता और पालकी टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती। आखिर राजा से सहन नहीं हुआ और वह चिल्ला के बोला : ''कौन है तू? इतनी बेढंगी तरह क्यों चलता है?''

''हे राजन! मैं लम्बा-पतला, दुबला-पतला, भद्दा, सुन्दर - यहां कुछ भी हो सकता है - आदमी हूं ...मैं वैसे तो एक ब्राह्मण हूं पर वास्तव में तू ही बता कि मैं कौन हूं? और...तू भी असल में कौन है? तुझे किस नाम से पुकारूं...? क्या तू मात्र एक शरीर है? क्या तेरी पहचान जन्मजात है? तू राजा क्यों है...और यह पालकी कहां से आई है....इसमें कैसी लकड़ी लगी है...क्या इस पालकी का मूल स्वरूप वह पेड़ है जिनकी लकड़ी से यह बनी है? क्या तेरी पोशाक मूलत: वह कपास का फूल नहीं जिससे ये बनी है? हवा तो सर्वत्र उपलब्ध है पर बांसुरी के छिद्रों से गुजरती हुई - यह कैसे स्वर गुंजारती है जो राग बन जाता है? इसी प्रकार न कुछ तू है न मैं। वरन सभी जीवन के अनन्त प्रवाह में क्षणिक पड़ाव रूपी अस्तित्व ही हैं।''

इस को सुनकर राजा को लगा कि सत्य उसके हृदय में स्पंदन में तीव्रता ला रहा है और तुरन्त वह अपने जन्म या अस्तित्व की धारणा से मुक्त महसूस करने लगा।

सत्योन्मेष तो बिजली की चमक की तरह तुरन्त घटित होता है। और जब यह उदय हो जाए तब हमें उस ओर जाना चाहिए जहां न कोई अस्मिता है न पहचान; न इसको गंवाने का खतरा, न अस्तित्व की याद न याद का अस्तित्व; न जन्म न मृत्यु की अनिवार्यता - मानो गहन निद्रा में एक अनन्त जागरण में उभरता हुआ एक शाश्वत प्रश्न : ''मैं कहां हूं?''

- वशिष्ठ रामायण और भागवत के एक प्रसंग से प्रेरणा लेते हुए।

विषय सूची

1.	पहला दिन	9
2.	शब्दों की दुनिया	18
3.	मुलाकातें	31
4.	तुमने क्या देखा?	45
5.	शून्यता	56
6.	मेरी उनसे वाराणसी में मुलाकात हुई थी	69
7.	वाराणसी, पांच वर्ष पहले	82
8.	एक अन्तर्निहित तर्क	94
9.	नरेश, लाडरी, जेन एवं अन्य	115
10.	दृष्टिभ्रम के लाभ त्याग दो	130
11.	मैं वहीं हूं जहां तुम हो	142
12.	शांति	156
13.	दीक्षा	169
14.	भिक्षाटन	182
15.	बंग होंडी मन्दिर	190
16.	पिवेल महोदय	208
17.	कोनर	227
18.	पुष्कर के घाटों पर	241
19.	एक साधू : कार्य-रत	252
20.	चमत्कारी बाबा, जादूगर और अन्य रहस्य	269
21.	बाबाजी बाबा और बाल योगी	285
22.	शांति-गुहा	300

पहला दिन

गंगा पर अभी भी अंधकार छिटका था। हमारे पीछे, तार से एक बल्ब लटका हुआ था जिसकी पीली रोशनी मंदिर के द्वार पर तीन गुंथे पड़े कुत्तों पर भी पड़ रही थी। चांद, हंसली-सा, आकाश में उतर रहा था और किनारे पर छोटी-छोटी लहरों का स्पन्दन शांत हो रहा था। मैं आनन्द बाबा के पास, थोड़ा पीछे बैठा था और अपनी बतौर रमते जोगी की पहली रात्रि पर विचार कर रहा था। मैं अपने पतले से सूती कंबल में ठण्डा रहा था जिसमें मंदिर के आंगन में बरगद के नीचे मैं सिकुड़ा पड़ा था तभी एक भैंस मेरे निकट आ कर बैठ गई। लगा मानो वनस्पति के देवताओं की यही इच्छा है कि मैं इस सुन्दर रात को एक गुंजारती हुई सांस लेती काली विशाल भैंस के साथ बिताऊं। असलियत का तो यही मजा है।

हम लोग साधु है....अर्थात घर-विहीन भिक्षुक, रहस्यमय जोगी, भटकते दार्शनिक, निष्काम कर्म के प्रचारक, शिव भक्त, गांजे के प्रेमी, चमत्कार दिखाने वाले पवित्र जन। स्वामी आनन्द विश्वात्मा सरस्वती बाबा मेरे गुरु व पथ-प्रदर्शक हैं। उन्होंने मुझे नाम दिया है - प्रसाद अर्थात् नैवेद्य। वे सुते हुई शरीर वाले, मित भोजी, चालीस वर्ष के हैं। आंखों के चारों तरफ हल्की झुर्रियां दिखाती उनकी त्वचा हल्की भूरी-सी है, तथा उनकी पतली नाक है। मुंह का जैसा बड़ा है जो सदैव मुस्कराता-सा प्रतीत होता है। चेहरा पतला और लम्बा लगता है। वह प्रायः हंसते रहते हैं। उनके मस्तक पर विभूति का त्रिपुण्ड लगा दें और आंखों के मध्य लाल सिंदूर की रेखा खिंची है। ताम्रवर्णी अग्नि का रंग है। छाती पर एक वस्त्र और कमर के नीचे लुंगी तथा सर पर एक छोटी सी पगड़ी सी जिसमें उनकी जटाएं बाहर फूटती लगती है।

साधु वर्ग एक व्यवस्था का हिस्सा है जो पांच हजार वर्षों से प्रचलन में है। ये उन ऋषियों के सीधे वंशज - गुरु से शिष्य परम्परा में - माने जाते हैं, जिनका उल्लेख प्राचीन धर्म ग्रन्थों और आदि पुस्तकों में है। ये लोग स्वयं को ब्रह्मा की पहली संतान मानते हैं जो उनकी सृजनात्मक श्वास से पैदा हुए थे। इन्हीं ऋषियों ने ईश्वर की अवधारणा कर उनके पुराण बनाए। उनके द्वारा सृजित ऋगवेद की ऋचाओं में इनकी प्रशंसा है : ''ये गगन व धरती के धारक हैं और वायु पर सवार होकर चलते हैं...अस्तित्व व अनस्तित्त्व का भेद इन्हें ही ज्ञान है।' ये देवताओं को उपदेश देते हैं और राजे-महाराजों को उनकी वृत्ति के अनुसार वरदान या श्राप देते हैं। सिकन्दर महान

ने इन्हें 'जिमनोसोफिस्ट' की संज्ञा दी थी। बुद्ध ने इनमें से पांच के साथ महान कष्ट सहे परन्तु बाद में इन प्रथाओं को त्याग कर 'बीच का मार्ग' अपनाया। शंकराचार्य ने इनके विचारों के आधार पर इनके मत-वाद बनाए।

पिछले दिन ही हम भोर के समय वाराणसी से चले थे। लगभग दोपहर हो रही थी जब हम भूरी-भूरी धरती के टुकड़ों से घिरी जगह पर पहुंचे। गेंहू और धान के पौधे के बीच से गुजरती एक धूल भरी राह पर चलते हुए हम गंगा किनारे स्थित एक बड़े गांव में पहुंचे। वहां एक या दो मंजिले सफेद पुते मकान थे जो आपस में सटे-सटे थे। हर एक का द्वार एक अहाते में खुलता था जहां चार या पांच भैंसे जुगाली करती दिखाई पड़ती थी। सड़कों पर भी घासों के भूरे पूरे पड़े दिखते थे और छोटे-छोटे हाथों की छाप लिए कण्डे उन मकानों की दीवारों पर सूखते नजर आ रहे थे।

नवागुन्तकों के आगमन से प्रसन्न होते हुए गांव के लड़के चीखते-चिल्लाते, हंसते-खेलते हमारे पीछे चलने लगे। किशोरो ने तुरन्त उन छोटे लड़कों को भगा दिया और खुद उनकी जगह चलने लगे। एक परिवार के मुखिया ने आकर हमारा 'हरिओम' कहकर स्वागत किया। दूसरों ने भी आकर स्वागत किया। ''चाय चलेगी, बाबा?'' लाल साड़ी वाली एक महिला ने पूछा....एक लड़की खूब मीठे व गुनगुने दूध के कप ला रही थी। ''दूध, बाबा जी?'' शालीनता से झुकते हुए उसने पूछा।

हम घाट पर पहुंच चुके थे - यानी उन ढलानों पर जो नदी तक ढलकने लगते हैं। आनन्द बाबा ने हाथ जोड़कर गंगा मां को प्रणाम किया। मैंने उन्हीं का अनुसरण किया। अपने कम्बलों को तह कर हम एक हरे बरगद के नीचे बैठ गए जो मंदिर और नदी के मध्य स्थित था।

हमारे साथ जो गांव वाले आए थे, उन्होंने कई बेतुके प्रश्न किये, ''क्यों, कितना क्या' पूछना शुरू कर दिया। आनन्द बाबा ने उन्हें बताया कि मैं फ्रांस से आया एक पश्चिमी व्यक्ति हूं जिसने आज सुबह से ही संन्यास धारण किया है। यह भी भगवा वस्त्र धारण करना चाहता है परन्तु अभी तो - उन्होंने दिखाया - ''यह सफेद पजामा-कुर्ता पहने है जो एक नौसिखिया की पहिचान है।'' बाबा ने उन्हें बताया कि मैं हिन्दी बोल लेता हूं। जब वे लोग अपने सवालों से हमें परेशान कर रहे थे, मेरे गुरु, बाबा ने उन सबके सामने ही मुझे एक गुर दिया : ''यदि आप इन प्रश्नों को रोकना चाहते हो तो कहो: ''साधु का कोई भूतकाल नहीं होता''।

इसी प्रकार का प्रतिसाद देकर कुछ दिन पूर्व बाबा जी ने मेरी जिज्ञासा शान्त की थी।

''काल शब्द में तो आने वाला कल भी समाहित है, ''मेरा अवलोकन था।

''साधु का कोई भविष्य नहीं होता, ''बाबा ने जोर देकर कहा और हंसने लगे। हम सबको भी हंसी आ गई।

तभी मेरे गुरु ने घोषणा की : ''नमः शिवाय! शांति-शांति-शांति!'' पूरी चेतना में उच्चारित पवित्र शब्द'' से सारा माहौल शान्त हो गया।

घाट के नीचे, सीढ़ियों पर तीन नावें हिल डुल रही थी। हमारे सामने बहती हुई गंगा सूर्य की रोशनी में अपनी शांत और शाही धारा में बह रही थी। कुछ दूरी पर एक मछुआरा अपने जाल डाल रहा था। नदी के दूसरे किनारे पर वनस्पति के परे मानो आकाश तक रेत बिखरा था। इस स्तब्ध एवं शांत वातावरण में जैसे समय भी थमा-थमा-सा प्रतीत हो रहा था।

हमारे नवयुवक साथी, गांव वाले, हमारी उदासीनता से विमुख होकर अपने रास्ते निकल गए।

तब बाबा ने अपनी पोटली में हाथ डालकर चिलम निकाली और - हशिश तथा तम्बाकू का एक मिक्सचर बनाने लगे...'कांव कांव' करता एक कौआ पास के स्ट्रीट लैम्प पके खम्बे पर बैठा बोल उठा। बाबा ने उसकी ओर देखकर पूरी गंभीरता से 'कांव-कांव-कांव' कर कौवे की पुकार दुहराई। दूर से ही आ मछुआरे ने हमारा अभिवादन किया: ''राम-राम''! हमारे गुरु ने प्रत्युत्तर दिया : ''नमः शिवाय!'' तभी दो ब्राह्मण पुजारी, अपने तेल-पुते बालों और नंगे बदन पर जनेऊ धारण किए हमारे पास आए और हमारा आशीर्वाद ग्रहण किया। 'ओम् नारायण! नमः शिवाय!'' कहते हुए बाबा ने एक सूती चादर उनके सामने बिछा दी जिस पर वे दोनों बैठ गए। ''आप कहां से आ रहे हैं, बाबा जी, और कहां जाने का इरादा है।'' उन्होंने मेरे बारे में भी पूछा आनन्द बाबा ने उन्हें बताया कि मैं एक फ्रांसीसी युवक हूं जो जोगी की दीक्षा लेने आया है। तब मेरे गुरु ने कहा : ''एक अभावग्रस्त राजा भी गरीबी का कष्ट ऐसे ही भोगता है जैसे एक भिखारी। इसी प्रकार जो व्यक्ति शरीर को ही सब कुछ मानता है, जन्म से ही बीमारी और मृत्यु के कब्जे में आ जाता है। लेकिन यदि वह ऐसी धारणा से मुक्ति पा ले तो उसे आनन्द मिलता है। लेकिन माया के प्रभाव से जो हर तरह से पूर्ण है, स्वयं को अपूर्ण ही समझता है।

हिन्दू दर्शन में माया को प्रायः भ्रम या अज्ञान का प्रतीक माना जाता है। वस्तुतः यह दिमाग की ताकत का वह प्रतिक्षेपण है जो अपनी धारणा के कारण सत्य को भ्रम और भ्रम को सत्य समझने लगता है। इस तरह एक मूलभूत किन्तु समानान्तर त्रुटि पैदा हो जाती है कि हम एक अलग सत्ता के रूप में विद्यमान है और व्यक्ति समष्टि से भिन्न है। इस बारे में बाबा प्रायः मुझको ज्ञान दिया करते थे।

"उपनिषद का कथन है कि सूर्य में भी वही आभा द्युतिमान है जो इन्सान में है।" हमारे एक मेजबान ने अपनी सहमति जाहिर की।

''बाबा जी तो जीवन-मुक्त संत है, '' दूसरे ने ऐसे कहा मानो व प्रश्न पूछ रहे हो पर ताईद भी कर रहो हो।

''परन्तु जो एक सम्पूर्ण सत्ता है वह दो में कैसे बँट कर यह कह सकती है कि मैं अपने दूसरे हिस्से को नहीं समझती?''

''हरे-हरे!'' तारीफ में सर झुकाते हुए मेहमानो ने कहा।

''चिलम, पंडित जी,'' हमारे गुरु ने पेशकश की।

''नहीं-नहीं!''

उन लोगों ने एक बीस रुपए का नोट गुरु जी के कम्बल पर रखा और एक पांच का मेरे कंबल पर - फिर वे चले गए।

आनन्द बाबा ने अपनी तैयार चिलम को सुलगाने के लिए अपनी पगड़ी में से एक माचिस निकाली और मेरे हाथ में दे दी। तब उन्होंने उस शंकुनुमा नली को सामने कर एक जोर की फुंकार मारी मानो कोई गहन मंत्र पढ़ा हो.....'अल्लऽऽख!'' यह एक प्रार्थना थी।

''बाबा जी...यह अलख...क्या होता है?''

''इसका अर्थ होता है महान निर्गुण शक्ति...निर्गुण ब्रह्म!'' बाबा ने घोषणा की।'' हमारी प्रार्थना होती है कि उसका साक्षात दर्शन कर सकें...अपने और अपने आस-पास के बारे में पूरी जागरूकता से समझ सकें। हर दर्शन सुलभ हो जाए! वह चरम स्थिति!''

जब चिलम आपस में घूम-घूम कर हर एक के पास जाती है तो सब शान्त रहते हैं - बाद में भी मौन छाया रहता है। पीने वाला उस क्षण का बेसब्री से इंतजार करता है जब नशे के प्रभाव में दिमाग के सारे पर्दे हट जाएं और भ्रम को छिन्न भिन्न कर असलियत सामने आने लगे।

हमने उस पर्दे को हटाया, भ्रम को छिन्न भिन्न किया, उस चरम स्थिति का दर्शन किया...पूरी जागरूकता के साथ, उस परम सत्ता के सान्निध्य में।

तभी एक बच्चा दो कप चाय ले आया! ''हर हर महादेव! ईश्वर कितना दयालु है, हमारा कितना ख्याल रखता है।''

* * *

एक मोटा ब्राह्मण, मोटे शीशों का चश्मा पहने ठीक गंगा के सामने बैठ कर जोरदार आवाज में दुर्गा की संस्कृत में स्तुति करने लगा - देख के बड़ा मजा भी आया पर थोड़ी करूणा भी जागी।

''कितनी आंखें खराब हैं इसकी : दुर्गा को बहुत पास आने पर भी यह पहचान पाएगा। परन्तु इतनी जोर से बोलता है कि दुर्गा घबड़ाकर पीछे हट जाएगी।'' मैंने कहा।

आनन्द बाबा हंसी से विहव्ल हो गए, ''अरे वह तो अपनी मां को पुकार रहा है'' उन्होंने कहा : ''दुर्गा, तो शिव की शक्ति है - उनकी सृजनात्मक शक्ति - वह तो सबकी योनि है।''

वह ब्राह्मण अपनी सफेद तौलिया बिछा के बैठ गया और उसने अंगूठे के बराबर धूप जला कर अपनी पूजा संपन्न की - तीन बार 'ओम' का उच्चारण करके। जाने से पहले उसने अपने साथ लगाए प्रसाद का भोग लगाकर हमें रामदाने के लड्डू दिए।

कुछ मिनट बाद एक आदमी आकर हमसे बोला : ''हरिओम! नमः शिवाय।'' फिर उसने श्रद्धा से झुक कर आनन्द बाबा के पैर छुए और अपनी हाथों की अंगुलियां

आखों से लगाई। आनन्द बाबा ने यह आदर काफी उदासीनता के साथ स्वीकार किया। 'हरिओम!' कहकर वह मेरे सामने भी झुकने लगा पर मैंने उसे ऐसा करने से मना किया। वह आदमी वहां का एक जमींदार था जिसने हमारे आने पर हमारा स्वागत किया था। ''आप लोग कहां से आ रहे हैं और कहां जाने का इरादा है? किसी चीज़ की जरूरत तो नहीं?'' आनन्द बाबा ने बताया कि 'मैं तो एक विदेशी हूं - कल से ही जोगिया बाना धारण किया है...इत्यादि।' वह उसे सबको हंसाता रहता है, ''उन्होंने कहा। बाबा कभी अपने संदर्भ में भी हम या मैं का इस्तेमाल नहीं करते थे। हमेशा 'वह' ही कहते थे जिसमें सब लोग शामिल रहते थे। पढ़ने में आसानी रहे इसलिए कभी-कभी मैं उनके लिए भी सर्वनाम का प्रयोग कर देता हूं।

वह आदमी हमारे दर्शन कर, हमारे सान्निध्य का आनन्द लेकर चलने लगा। बाबा ने उसे एक लड्डू दिया और एक मुझे भी दिया।

तब वहां एक चालीस वर्षीय व्यक्ति आकर बैठा - हेमचन्द्र वाणीनाथ, जो कपड़ों और शॉलों की दुकान का मालिक था। उसने हमारे साथ चिलम पीने की इच्छा जताई। मेरे गुरु ने मुझे चिलम बनाने को कहा। आपस में वे एक कबीर की लाइन पर चर्चा करने लगे। जिसका भाव था : ''मौन के पर्वत पर चढ़कर अपने गुरु को खोजो।''

''मौन क्या होता है? क्या बता सकते हो?'' मेरे गुरु ने प्रश्न किया।

हेमचन्द्र थोड़ी देर सोचता रहा, फिर विनम्रता से मना करते हुए कहा : ''मेरे लिए यह प्रश्न बहुत महान है, बाबा जी।''

''बम-बम बोले भोलेनाथ! अलख!'' और चिलम का दौर शुरू हो गया।

फिर मौन छा गया।

उस आगन्तुक के साथ हमारा एक तादात्म्य सा स्थापित हो गया - हम मौन रहकर भी जागरूकता अनुभव करते रहे। चलती हवा ने थोड़ी धूल उड़ाई...उधर मछुआरे ने फिर अपना जाल लहरों पर डाला। पानी से एक डोलफिन उछली और फिर गोता खा गई। उपर आकाश पर एक चिड़ियों का झुंड गुजर गया।

''मौन यानी जो वह नहीं सुन पाता'' आनन्द बाबा ने कहा : ''यद्यपि वह सुन तो नहीं पाता परन्तु मौन उसे उस भाव का ज्ञान करा जाता है जो साधारणतया ज्ञानगम्य नहीं है''

फिर मौन!

तभी मौन को तोड़ते हुए बरगद से कुछ सूखे पत्ते झड़ के नीचे गिरे।

'दो विचारों के मध्य भी मौन होता है।' आनन्द बाबा बोलते रहे, 'यदि वह इसको ध्यान में रखे तो वह उसको भी जान सकता है जो ज्ञानगम्य नहीं होता। गुरु तो हर जगह मौजूद है...लेकिन मौन ही वह सवारी है जो गुरु तक पहुंचती है, ''उनका निष्कर्ष था।

हेमचंद्र ने बतौर गुरु दक्षिणा, 20 रुपए निकालकर बाबा के कम्बल पर रखे। मेरे गुरु ने उसे आशीर्वाद दिया : ''सर्वम् खलविद्म ब्रह्म' (यह सब कुछ ही ब्रह्म है -

ब्रह्म से आता है और ब्रह्म में ही जाता है) और उसे एक लड्डू दिया। हमारा वह मेजबान अपना व्यापार संभालने को चल दिया।

उस मार्ग पर आने जाने वाले भी 'हरिओम! राम-राम! नमः शिवाय!!" इत्यादि कह कर हमारा अभिवादन करते थे। आनन्द बाबा प्रसन्न थे। वह मानो समस्त विश्व को एक शुभ आनन्द का माध्यम समझ रहे थे। वह वसन्त ऋतु का समय था और दिन थोड़े भरकने लगे थे।

धीरे-धीरे मंदिर की छाया लम्बी होकर घाट पर फैल गई।

* * *

सूर्यास्त के बाद एक आयुधधारी चर्तुभुजी विष्णु के मंदिर के ऊंचे खंभे वाले हॉल में गए जहां लगभग एक दर्जन पगड़ीधारी और बालों वाले साधु मिले। खंभों के बीच में बाबाओं के कम्बल इत्यादि बिखरे हुए थे - एक पूरी 'धर्म बस्ती' की छटा थी। एक साधु बैठा-बैठा संस्कृत का कोई ग्रन्थ पढ़कर इतना लीन हो रहा था कि बार बार अपना सर भी हिलाता जाता था, दूसरा बार-बार अपना चश्मा ठीक करता हुआ 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' अखबार पढ़ने में व्यस्त था। बाकी लोग समूह में बैठे थे और धीमी आवाज में बातचीत कर रहे थे।

''राम - राम!''

''हरि ओम!''

''नमः शिवाय!''

''कहां से आना हुआ, बाबा जी?''

हमारे गुरु ने आह्ल्लादपूर्वक कहा : ''ये यहीं और यहीं है! यही माया का जादू है। पर फिर भी, क्या ये कहीं अन्यत्र कभी भी हो सकते हैं।''

तभी एक युवा साधु बीच में बोला : ''मैं तो भारत से हूं।''

''क्या बाबाजी अपना आसन यहां लगाना पसन्द करेंगे'' एक जोगी बोला जो बिल्कुल टैगोर जैसा लगता था।''

''वह कल्पना भी नहीं कर सकता कि 'वह' कहां नहीं है", बाबा ने निरपेक्ष भाव से मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

बाद में मेरी समझ में आया कि सब प्रश्नों के इस उत्तर ने उन्हें ऐसे लोगों की जमात में लाकर खड़ा कर दिया तो तुरन्त सम्मान के लायक होते हैं - एक ज्ञानी, विद्वान - सलीकेदार इन्सान जिसका जोगियों में सर्वत्र आदर होता है।

''आपका ज्ञान तो लाखों सूर्यों के समान प्रकाशवान है,'' 'टैगोर' ने कहा बड़े खास अंदाज से।

बाबा ने मुस्कुराकर वह स्थान ग्रहण किया जो उन्हें पेश किया गया था। मैंने भी अपना कंबल उनके पीछे लगा दिया और फिर मैं उपस्थित बाबा लोगों को अपना

आदर प्रकट करने चला गया। ''कहां से आ रहे हो : कहां जाना है? किसी चीज की जरूरत तो नहीं?'' इत्यादि!

तब उस ग्रन्थ-अध्येता ने मुझ से कहा ''अपरिवर्तनीय वास्तविकता ही मुक्ति का प्राकट्य है।''

हाथों हाथ चिलम लगातार घूमने लगी। मंदिर के ब्राह्मणों ने अपने कार्यकर्त्ताओं द्वारा हमारे सामने प्रचुर मात्रा में भोजन परोसवा दिया...''चावल, राम जी? दाल..राम जी? सब्जी राम जी? दही राम जी...चपाती राम जी?'' हर कोई अपनी जगह बैठकर भोजन कर रहा था।

वे सभी एक दूसरों को सम्बोधित 'महाराज!' 'गुरु जी' 'पंडित जी' इत्यादि से करते थे। उनमें सब से छोटे की आयु 14 वर्ष के लगभग और सर्वाधिक वयोवृद्ध की 70 वर्ष थी। हर जाति/तबके/समाज/देश/ प्रांत या उप महाद्वीप से आने वाले ये लोग अभी दो घंटे पूर्व ही सबसे मिले थे, पर ऐसी घनिष्टता लग रही थी मानो युगों से परिचित हों। एक दूसरे के प्रति बहुत सादगी भरा और ध्यान केन्द्रित व्यवहार था। आपस में मिले इन लोगों का जमघट काफी विविधता पूर्ण तो लग रहा था परन्तु कोई अवसाद भरे अनिश्चिय का भाव नहीं था - बल्कि वहां एक प्रकार की पवित्रता पूर्ण निस्पृहता किन्तु थोड़े अलगाव के साथ जाहिर हो रही थी।

मैंने बाहर आंगन में सितारों की छांव में कुटे हुए फर्श पर अपना कम्बल बिछाया। नींद आने से पहले मुझे पहली बार लगा कि मानो मैं धरती और आकाश का पुत्र हूं।

भोर से काफी पहले आनन्द बाबा ने मुझे जगा दिया ...हम अंधेरे में ही शान्त और शीतल बहती गंगाधार में डुबकी लगा आए। घाट पर बैठकर ही पूर्वाभिमुख होकर हमने ध्यान किया।

''भोर के जरा पहले आकाश में फैलने वाली उस हल्की सी आभा को देखो जो अंधकार पर हावी होती है, और उसके साथ ही उठना चाहिए, '' मेरे गुरु ने कहा : ''भोर की पहली किरण के सदैव दर्शन करना-यह ज्योर्तिमयी सृष्टि का दर्शन होता है।'' पर मैं वह क्षण गंवा बैठा। ध्यान करना तो मेरे लिए अपने अंतरात्मा से संवाद करना ही होता है।

नदी के दूसरे छोर पर सूर्य रेत पर झिलमिला रहा था - वनस्पतियों की रेखा स्पष्ट हो रही थी। क्षितिज पर आकाश अभी भी बैंगनी था और धीरे-धीरे नीलापन गहरा रहा था। निद्रालु भोर में वहां एक उमस भरा मौन पसरा हुआ था।

नाववाले एक दूसरे को जगाने के लिए आवाजें लगा रहे थे : ''राजर! कृष्णा! गोपाल! चित्रादन!''

आनन्द बाबा उठे। हमने अपनी पोटलियां कम्बल इत्यादि कंधे पर धरे तथा कमण्डल ले कर चल दिए।

सर पर छत से इस तरह आरक्षित होने की संभ्रांति से मैं काफी भयभीत था। परन्तु अन्ततः सदमा कोई बहुत भारी नहीं लगा। वस्तुतः जिससे हम डरते हैं वह कल्पना में ज्यादा भयभीत करता है वास्तविकता में नहीं। आनन्द बाबा का तो कथन है कि उन्हें कभी कोई अभाव महसूस ही नहीं हो सकता क्योंकि समग्र विश्व ही उनकी चेतना का प्रतिबिम्ब है। जहां तक मेरा प्रश्न है, मुझे तो यह विश्वास कभी नहीं हो पाया, न मैं अपने गुरुओं की तरह पूरी असंपृक्तता का भाव विकसित कर पाया।

''आप कहां से आ रहे हैं और किधर जाना चाहते हैं? आपका हमारे साथ टिकने का उद्देश्य क्या है" यह उस गांव के मुखिया के प्रश्न थे जिससे हम गुज़र रहे थे।

वह एक तख्त पर बैठे अपने दोस्तों के साथ ताश खेल रहे थे - तख्त घर के दरवाजे के सामने पड़ा था।

''हम सबकी एक ही मां होती है - वही हम सबको पैदा करती है, पोषण करती है और वही हमारे अपने जाने का केन्द्र है।'' आनन्द बाबा ने कहा।

गांव के लोग तुरन्त बहुत सारा भोजन लेकर हमारी खातिरदारी करने लगे। पिताओं ने बड़े बेटों, बड़े बेटों ने छोटे भाईयों और छोटे भाईयों ने अपनी बहनों को हुक्म दिया, जो पूरा किया जाने लगा। कई कमसिन लड़कियां चाय, बिस्कुट, केले , वेजीटेबल बिरयानी (पुलाव) एवं पूड़ियों के साथ हाजिर हुई।

जब उन्होंने मेरे पांव की धूलि हाथों से उठाकर अपनी आंखों पर लगाई तो मुझे लगा कि मैं उस आदर का हकदार नहीं हूं। लेकिन मैं बेहद अभिभूत जरूर हुआ, हालांकि यह पारम्परिक अभिवादन का ढंग मेरे अपने लिए नहीं वरन् उस पवित्र बाने के लिए था जिसमें मैं था - या उस स्थिति के लिए जिसका मैं निमित्त बनना चाह रहा था।

हिन्दू धर्म ग्रन्थों में संतों की बड़ी महिमा गायी गई है। संतों का सानिध्य बड़ा पवित्र होता है। साधु (मूल अर्थ भला आदमी या संत) लोग तो सड़कों पर घूमते फिरते हैं, मंदिरों में बसेरा करते हैं, पवित्र पेड़ों के नीचे आराम करते हैं, आश्रम इत्यादि उनके घर होते हैं। इन्हें प्रायः बाबा कहा जाता है जिसका मूल अर्थ होता है पिता। मंदिर में तो ईश्वर से प्रार्थना की जाती है पर साधुओं का साथ ईश्वर को पाने के लिए किया है। साक्षात पवित्रता का अनुभव करना, अव्यक्त पूर्ण से संवाद करना या जीवन की सादा घटनाओं पर चर्चा करना, चिलम पीना और आशीर्वाद पाना साधु के साथ ही संभव होता है - या एक मजेदार साथ में कुछ भी न करना - सब कुछ बैठे-बैठे ही प्राप्त करने का एक संपूरक भाव अनुभव करना!

यदि माहौल सुखद हो, मशविरा न्यायपूर्ण हो दर्शन उद्धार करने वाला हो तथा पवित्रता हर तरफ फैली लगे तो बाबा, एक दिन गुरु भी बन जाता है। और यह एक आशीष ही होता है।

हिन्दू लोगों को प्यार करने से प्यार होता है। पूज्य भाव अहम् को विचलित करता है। यदि दिल से चाहा जाए तो प्रेम का पूरा प्रतिदान मिलता है। पूजा से ही निर्वाण भी मिलता है। इसमें विश्वास का नहीं आशीर्वचन का महत्व होता है।

भारत आधुनिक होने की कगार पर है। बैलगाड़ी और ट्रैक्टर, कुएं का पानी और माईक्रोवेव ओवन, कुल्हड़ और प्लास्टिक बैग्स, तेल की कुप्पी और जैनेरेटर्स एवं न्यूक्लियर प्लांट्स, लुहार और विश्व के अग्रणी स्टील उत्पादक, रिक्शा और केबल टीवी, सपेरे और इलैक्ट्रिक कंपोनेन्ट प्लांट्स, भ्रष्टाचार एवं संन्यास यहां एक साथ रहते हैं। 2 करोड़ भिखारी, पांच लाख हर वर्ष तैयार होकर निकलने वाले इंजीनियर्स जिनमें से ज्यादातर मंदिरों में प्रार्थना करने जाते हैं और इम्तहान के पूर्व साधुओं से आर्शीवाद ग्रहण करने के इच्छुक रहते हैं - इसी देश में मिलते हैं। शायद योगियों-साधुओं की संख्या यहां कुल नर आबादी का आधा प्रतिशत है।

शब्दों की दुनिया

हम लोग एक रात से लेकर कुछ हफ्तों तक किसी पवित्र शहर के बड़े मंदिर, धर्मशाला या अखाड़े में रुक जाया करते थे। धर्मशालाएं तीर्थ यात्रियों या रमते योगियों के ठहरने के स्थान होते हैं। जो धनी व्यापारियों द्वारा बनवाई जाती है। एक बाबा आश्रम या अखाड़ा एक प्रकार का मठ होता है जिसमें स्थायी भाव से रहने वाले साधु रहते हैं। उन में भी रमते जोगियों को आश्रय दिया जाता है। इन अखाड़ों में विभिन्न समयों पर गृहस्थ भी आकर अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते हैं। वहां आकर चिलम पीना और भिन्न विषयों पर चर्चा करना - यथा गेंहू की फसल या धान की फसल कैसी होगी - एक आम शग़ल रहता है। कुछ इलाकों में हर गांव में तीन से चार बाबा आश्रम होते हैं। शहरों में इनके साथ कोई मंदिर भी जुड़ा रहता है जिसमें होने वाली आय से इनका रखरखाव होता है। वैसे 10वीं या 12वीं शताब्दी के स्थापित विशाल अखाड़े भी हैं जिनकी कई शाखा प्रशाखा होती है जिनमें हजारों बाबा लोग रहते हैं। ऐसे ही टिकासिरों में कभी कदा हमको भी किसी छांह या पेड़ के नीचे थोड़ी सी जगह या कमरा मिल जाता जहां हम अपना आसन जमा सकते थे। कभी-कभी तो हमारे साथ 50 से ज्यादा लोग होते थे।

''राम गिरी, तुम्हारे कमरे में थोड़ी जगह होगी?''

''उसमें तो हम दो ही हैं।''

इसी प्रकार हम लोगो का इंतजाम होता था।

जबकि गृहत्यागी योगी घूम फिर नहीं रहा होता, तब उसका समय निपट आलस में बीतता था - नहाना धोना, पूजा पाठ करना, मंत्र पढ़ना, कुछ भजनादि गुनगुनाना, उपनिषद आदि को पढ़ना, गप्पें लगाना, लोगों से मुलाकात करना, अखबार पढ़ना, चिलम पीना और चाय सुड़ुकना। मैं तो पढ़ता और सुनता रहता था। मेरे थैले में दो पुस्तकें थी : 'अवधूत गीता' और 'अष्टावक्र संहिता'। मुझे एक पुस्तक भंडार से आन्द्रे मॉलराक्स की 'एण्टी मोमाइर्स' की पुरानी प्रति भी मिल गई थी।

सूर्यास्त के समय जब आरती-पूजा' होती तब सारे साधु एक जगह जुड़ जाते थे। धर्म चर्चा एवं भजन गायन संध्या को होता ही रहता था।..'शिव ओम् शिव कल्पतरू. ...''जय मां....इत्यादि! हर साधु अपने समय के अनुसार वहां से हट के अपने कंबल में जाकर लेट जाता था। तकिए की जगह अपने थैले इस्तेमाल किए जाते थे।

हम पर कृपा करने वाले या हम से कृपा की आकांक्षा करने वाले कुली, बैंक मैनेजर विक्रेता और मंदिर को व्यवसाय की तरह अपनाने वाले हमारे पास आया ही करते थे - दर्शनादि के लिए। हम लोग क्या थे- एकाकी, थके-हारे संसार से भाग कर आए लोग जो नशे की शिद्दत में सब कुछ भुला देना चाहते थे! लेकिन हम से मिलने आने वाले हमें भगवन् भक्त समझते थे - यानी हाड़ मांस के उनके चलते फिरते आदर्श लोग। हम दार्शनिकों के सामने अपना दर्शन भी खूब बघारते थे - लोगों को उपदेश देते और हम से मिलने वालों के दिनों को सुन्दर बना देते थे।

कभी-कभी खुले आकाश के नीचे तो कभी नदी तटों पर चट्टान के नीचे या पेड़ की छांव में हमारा बसेरा होता था। एक बार तो हम एक बाबा की कुटी में भी रहे थे। नहाना धोना तो नदी पर ही होता था या हैण्ड पम्पों पर। एक बार किसी किसान ने हमें बुलाया, तो हम उसके ही बरामदे में रात भर रहे थे। उसने भैंस का ताजा दूध प्रचुरता से पिलवाया था। वाकई में वे लोग सुखी हैं जो अपनी दया में भी किसी की इच्छा को समो लेते हैं। सच है दूसरों की सहायता करने से बड़ा और कोई सुख नहीं है।

कुछ शहरों और कतिपय गावों में भी बाबाओं का जमघट लगा ही रहता है। वे लोग आते जाते तो रहते हैं पर उनकी संख्या घटती नहीं विशाल वट वृक्ष की छांह में या मंदिर के परिसर या किसी घाट पर वे अवश्य मिल जाएंगे। कभी-कभी तो हम सब एक धूनी के चारों तरफ निवास करते थे - धूनी यानी पवित्र भट्टी। जो धूनी के आस-पास बने रहते वे आने जाने वालों को भी रोक देते थे - उनके पास रसोई के बर्तन, एक स्कूटर, एक ट्रांजिस्टर रेडियो भी रहता है। कुछ प्लास्टिक के टुकड़े लेकर आस-पास तान दिए और पत्थर पर एक मूर्ति स्थापित कर दी - मंदिर तैयार हो गया ।

एक कम्बल, एक लुंगी, थोड़ी सी रस्सी, एक लाठी तथा किसी दीवार के साए में थोड़ी सी जगह मिल जाए तो साधु को स्वर्ग मिल जाता है। ऐसी ही जगह एक टेन्ट तान कर, धूप और आने जाने वालों के ध्यान से परे रहकर मैंने पूरे विश्व पर चिंतन किया तथा ओस से बच कर रात को खूब सोया।

यद्यपि कई बार हमें ज्यादा आरामदेह जगहें मिल सकती थीं, पर हमारे गुरु राजी नहीं हुए। इस प्रकार शायद हमें हर तरह के अनुभव का अभ्यास हो गया है।

जब हम सड़कों पर ठहरते थे तो मुझे वहां से खाना लेने जाना पड़ता था जहां ये बंटता था। ऐसी खबरे फैलती थी : "सुबह की पूजा अर्चन के पश्चात शिव मंदिर में चावल और सब्जी मिलेगी' या "मकरवाहिनी मंदिर में पूड़ी का सदाव्रत खुलेगा।'' आनन्द बाबा कभी नहीं जाते थे। पर शिष्य का कर्तव्य बनता है कि वह अपने गुरु को भूखा न छोड़े - इसलिए पचासों अन्य साधुओं के साथ मैं भी वहां जाकर खाना प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षारत रहता था।

कभी-कभी यदि एक डेढ़ घंटे के लिए किसी के इष्ट देव - यथा राम-सीता का भजन पूरी श्रद्धा के साथ कर दिया जाए तो वह आदमी आपको खाना खिलवा देता

है। यानी भोजन के लिए प्रार्थना करना! क्या तरीका है! यदि हमारे पास पैसा नहीं होता था तो मैं तो खाना खाता ही नहीं था और जब होता था तो रेस्त्रां में डिनर करता था।

भारतीय गरीबी भयावह है। सिर्फ भोजन कमाने के लिए रिक्शेवाले और कुली जानवरों की तरह जुते रहते हैं - परिवार सड़कों पर रहते हैं - चिथड़ों में बदन ढंके बच्चे हाथ पसार कर भीख मांगते रहते हैं। पर हम तो गरीब नहीं है। जो कुछ हमारे पास हमारे थैलों में है वह हमारा अपना है - हम उसके मालिक हैं। लेकिन हमें कई तरह की चीजें भेंट में मिलती रहती हैं - अत: चिन्ता रहित जीवन जीना संभव है। कई कृपालु लोग और संस्थाएं हमारी जरूरतें पूरी करवाती रहती हैं - कभी-कभी लम्बे समय तक हमें कोई अभाव नहीं खलता। अत: गरीबी में भी हम राजकुमारों की तरह रह लेते हैं। ''कर्म करना तो आवश्यक है'', भगवान कृष्ण भगवत् गीता में मनुष्य को सम्बोधित करते हुए कहते हैं। परन्तु एक साधु कहता है : ''नहीं, मैं व्यक्ति या आदमी अब नहीं रहा। अब मैं कुछ भी नहीं करूंगा। यदि मनुष्यता का सार कर्म हो तो मनुष्यता की स्थिति से परे जाना अकर्मण्यता है। "अकर्म ही तप है, हमारी व्यवस्था का मूल है।"

यानी साधु का उद्देश्य करुणा या परोपकार कतई नहीं है - ईश्वर के नाम पर दूसरों का भला करना या किसी उच्च आदर्श की प्राप्ति के लिए जीना! हम तो 'संन्यास' के अनुयायी हैं। आनन्द सब सिखाते हैं : 'वैराग्य का अर्थ अहमता का विषय-त्याग नहीं क्योंकि यहां अहम का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वैराग्य का अर्थ है अहम् भाव - मैं या मेरे की अनुभूति-या माया को विश्व में समाहित कर देना, मिटा देना। सभी को एक रूप समझना।"

कुछ गृहस्थ ऐसे भी होते हैं जो हम में कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहते। हमारी पूरी तरह अवहेलना करते हैं। उनका विचार है कि हम आलसी, बेईमान और नशेड़ी हैं जो कान के कच्चे लोगों को भरमाकर अपना फायदा करते हैं। लेकिन यह सदैव सच नहीं होता। कई लोग हमें पवित्र जन भी मानते हैं। वे ईश्वर का नाम लेकर हमारा अभिवादन करते हैं और हमारे पांव छूते हैं। वे दैवत्व, भलाई और कभी-कभी ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से हमारे पास आते हैं और हमारे संसर्ग के माध्यम से आनन्द प्राप्त करते हैं। वे हमें धन, कपड़ा, खाना, अपनी हैसियत या क्षमता के अनुसार देते हैं तथा अपनी मान्यता के अनुसार शुभ कर्मों का पुण्य प्राप्त करते हैं। उनके अनुसार हमारी सेवा ईश्वर की सेवा ही है। हमारे माध्यम से ईश्वर उन्हें कृपा देता है। वे हमें ईश्वर का 'कान' समझते हैं। उनके अनुसार हमारे पास गहरी अन्तर्दृष्टि, अन्तर्यामिता और अन्य दैवी शक्तियां होती हैं - खैर! इनके बारे में तो मुझे संदेह है। मैं संत नहीं हूं पर हम संतों का प्रतिनिधित्व जरूर करते हैं। हम पवित्रता, अकर्म और आत्म संयम के मूर्तिमंत स्वरूप हैं। लोग हमें प्रसाद देते हैं, भीख नहीं...और हम उन्हें धन्यवाद नहीं कहते, उन्हें आशीष देते हैं।

भंग का सेवन जोगियों में आम प्रचलन है - इसे पवित्रता का द्वार खोलने वाली कुंजी सदृश माना जाता है। चिलम बाबा तो इसे ईश्वर से जोड़ने वाली कड़ी मानते

हैं। इसमें भक्ति प्रगाढ़ होती है, दुनिया की अनुभूति अपनी प्रवृत्ति के माफिक लगने लगती है और चेतना में एक साक्षी-भाव उदित होता है। यह गंतव्य प्राप्ति का एक माध्यम बनती है और शायद यह कहना ज्यादा सही होगा कि इस त्याग में भोगना सहज लगता है। एक विरक्ति की अनुभूति जागती है। बाबा लोग इसके असर में निर्णयात्मक नहीं होते न अपनी प्रवृत्ति की पवित्रता का बखान करते हैं। उनके अनुसार वे ज्यादा खरे और सधे दर्शक बनते हैं और उसे ही वास्तविक समझते हैं जो उनकी चेतना महसूस करती है; रीति-रिवाजों से परे जाकर वे आध्यात्मिकता का एक सहज और छोटा मार्ग ढूंढते हैं जो अपने आप में एक कौतूहल पूर्ण प्रक्रिया है।

शिव एक शान्त, निशि-देवता माने जाते हैं जिनके सर पर चन्द्रमा रहता है। वह विध्वंसक हैं जिनके गले में मुण्डों की माला रहती है - इसलिए उन्हें 'कपालमालिन' भी कहा जाता है। उनके नेत्रों में अग्नि दिखाई पड़ती है और एक कोबरा गले के चारों ओर लिपटा हुआ रहता है वे श्मशान में गिद्धों और गीदड़ों के मध्य, कुछ वैरागियों के साथ दिखाए जाते हैं। पुराणों के अनुसार वे भूत प्रेत बेतालों से घिरे रहते हैं। मुझे वह एक अवधूत भगवान की छवि लगते हैं। उन्हें ही मैं अपना ईश्वर या इष्ट देव मानता हूं। लेकिन उन्हें योगिराज भी कहा जाता है जो कैलाश पर्वत पर 10 हजार सालों तक तपस्यारत रहते हैं। वह सगुण शक्ति का वास्तविक प्राकट्य है जो समस्त विश्व की नियंता है। अपनी शांति से वह माया पर विजय पाकर शरीर और मन के ऊपर चेतना की जीत दिखाते हैं। चिलम द्वारा हम उनकी आध्यात्मिकता से ओत प्रोत होते हैं - उनका लिंग विश्व की सृजनात्मक एवं विनाशात्मक शक्तियों का द्योतक है - अर्थात, समस्त ब्रह्माण्ड की शक्ति का मूल शिव ही है।

भंग में अन्य नशों की तरह भ्रंतिजनक चेतना नहीं पैदा होती वरन् दिमाग सपनों की तरह हर स्थिति स्वयं को ढालने का प्रयत्न करता है; बल्कि कभी कभी तो वास्तविकता को अपने पूरे आयामों के साथ स्पष्ट करता है। भय के साथ जुड़ी पादार्थिक विसंगतियों या फायदा नुकसान के विचार भी इसमें नहीं आते। जो जैसा है वही ज्यादा स्पष्ट होकर सामने आता है। इसलिए इसको तप का ही एक प्रकार माना जाता है। यह विश्व के वशीकरण से परे जाकर एक नई चेतना की अनुभूति देता है जिसमें असलियत के सारे कृत्रिम आवरण तिरोहित होते जाते हैं। इस वशीकरण के करण हम जिन प्रवृत्तियों को हावी होने देते हैं, भंग उनसे हमको मुक्त करती है और एक दैवी चेतना का आर्विभाव करती है।

वाल्डेलेयर ने इसको एक नवल वास्तविकता की दीक्षा कहा है जो वस्तुओं को उनकी उपस्थिति से परे जाकर एक अन्तर्दृष्टि से देखती हैं। यह वस्तुओं को उनकी सोची गई वास्तविकता से अपदस्थ कर उस सच्चाई को सामने लाती है जो हमारे संस्कारों के कारण स्पष्ट नहीं हो पाती। इसमें एक कौतुक का भाव जागता है जो मस्तिष्क को एक नया बोध प्रदान करता है। कभी- कभी वास्तविकता की आवरणित विद्रपता मन में एक विनोद का भाव भी पैदा करती है और हमें हंसने को उकसाती है।

लेकिन चरस व गांजा में हर चीज का आयाम इतना बदल जाता है, या बढ़ जाता है कि जागरूकता में एक परेशानी की अनुभूति भी जुड़ जाती है। इसीलिए मैं प्रायः चिलम आगे बढ़ा देता हूं। लेकिन बाबाओं की बात अलग है कुछ लोग तो इनकी बेहद तीखी खुराक 'कुछ पवित्र दिनों में' 15-15 तक चढ़ा जाते हैं। इस खुराक का चौथाई भाग भी भांग से ज्यादा प्रभाव दिखाता है। इसलिए नौसिखियों के लिए तो मेरी राय है : इससे बचो। यह एक प्रकार की कुर्बानी मानी जाती है जिसमें चेतना के गहन अन्वेषण के लिए वास्तविकता की बलि दी जाती है। यहां सवाल उस निद्रालुता का नहीं जो भांग के एक पदार्थ टी एच सी पैदा कर सकता है वरन् उन मायावी दृश्यों का है जो दिमाग में घटनाओं से एक छवि बना लेते हैं। जागरूकता को कुर्बान कर देना तो असफलता का ही द्योतक है लेकिन यदि निद्रालुता में समर्पण कर दिया तो फिर क्या महसूस हो पाएगा? नशे में भले-बुरे की समझ ही खो बैठना और सौजन्यता ही त्याग देना तो निश्चित ही गलत रास्ता चुनना है।

आनन्द बाबा वैसे इसके आदी नहीं थे। वह तो एक समरसता में डूबे ही रहते थे, उन्हें नशे की जरूरत ही नहीं थी। लेकिन जब कभी चिलम उनको दी जाती तो वह उसे अस्वीकार नहीं कर पाते थे और खुद भी दूसरों को पेश करते थे।

चूंकि भांग का सेवन कानून के बाहर नहीं है इसलिए साधु लोगों को इसको रखने की कोई मनाही नहीं है। कई बार तो हम ये सरकारी भंडारों से ही ग्रहण करते थे, कभी-कभी अनाधिकृत केन्द्रों से भी इसे प्राप्त कर लेते थे। कई इलाकों में गांवों में सरकारी शराब के ठेके के साथ भांग के भी केन्द्र होते हैं। ज्यादातर ये दुकानें लकड़ी के छोटे-छोटे खोखो में दिखाई पड़ती थी जो सामने से खुली रहती थी। वहां अखबारों में लिपटे गांजा (भांग के फूल) के दो किलो, एक किलो, 500 ग्राम, 200 ग्राम या और छोटे पैकेट टाँड़ों पर रखे रहते थे। भांग की ताजा गोलियां भी उपलब्ध रहती थी जो आईस बॉक्सों में रखी रहती थी। पांच-पांच रुपए में मिल जाती थी। इन ताजा गोलियों का असर पूरे दिन चिलम पीने के असर से भी ज्यादा प्रभावी होता था। भारत में ज्यादातर खराब गुणवत्ता वाला चरस ही मिलता है, उससे ये गोलियां कहीं ज्यादा अच्छा प्रभाव देती है।

कुछ एक इलाके ऐसे भी हैं जहां ऐसी दुकानें नहीं होती। अतः वहाँ ऐसे आर्थिक सम्बन्ध बनाना कि हमारे तप में विघ्न न हो, एक सामाजिक कर्तव्य बन जाता है। हमारे भक्तगण और कभी-कभी कृपा करने वाले लोग, जो पुलिस और सेना के अफसर भी होते हैं और हमारे सानिध्य में चिलमों का सेवन करते हैं, हमारे लिए बड़े काम आते हैं। वे थोड़ा बहुत यह सब हमारे घर भी पहुंचा देते थे।

* * *

एक शाम जब हम सितारों के तले धूनी के सामने या एक दरवाजे खुले कमरे में बैठे थे, जिसमें एक मोमबत्ती जल रही थी, बाबा ने मुझे कुछ उपदेश दिए। उन्होंने अपने मत या परम्परा के दर्शन सूत्र समझाए जो उनके घराने में मान्य थे।

''समस्त ब्रह्माण्ड में एक ही जीव है, ''उन्होंने कहा, ''जिसे ब्रह्म कहते... अपरिवर्तनीय शाश्वत् सत्ता!'' इसके बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता...सब लोग अपने अपने आभास बताते रहते हैं...कुछ कहते हैं वही सत् चित् आनन्द (वास्तविक सत्ता, चेतना और आनन्द) है।''

बाबा के उपदेश मेरी चेतना पर तत्व-मीमांसा आधारित एक नींव बनाते हैं। इसमें कई ऐसे संस्कृत के शब्द आ जाते हैं जिनको पूरी तरह अनूदित करना भी आसान नहीं क्योंकि एक साथ वह कई मानी प्रदान करते हैं। इनको यदि निकाल दिया जाए तो पूरा कथ्य नहीं आ पाएगा, और यदि शामिल कर दिया जाए तो पाठ बड़ा बोझिल हो जाता है। परन्तु उनको रखना आवश्यक है क्योंकि इससे विषय का विभिन्न आयामों में विस्तार होता है। वैसे ईश्वर की परम सत्ता, ब्रह्म सम्बन्धी सारे शब्द एक अद्वितीय, शाश्वत सत्ता को ही परिभाषित करते हैं।

आत्मा-ब्रह्म माया में जीव और ईश्वर की रचना करती है। जीव व ईश्वर के संयोग से सृष्टि बनती है। ईश्वर आराध्य है और जीव साधक है।

मुझे यह एक चतुराई पूर्ण दर्शन प्रतीत हुआ जो ईश्वर के अस्तित्व की पहेली को संवेद्य विश्व के कतिपय भ्रमों के साथ रूपायित करता है जो समस्त विश्व का सृष्टा भी है।

ईश्वर माया की ताकत से उसके संबद्ध विषयों को स्पष्ट करता है। वही असमानता के फर्क भी पैदा करता है। वही है जो समस्त ब्रह्माण्ड, प्रकृति, बाह्य विश्व एवं भौतिक शरीर की व्यवस्था करता है - यानी वह सब जो माया के कारण भिन्न प्रतीत होता है।

"स्वप्न में जीव भी ईश्वर सदृश हो जाता है जो अपने सपने में मनुष्य, पशु-जगत, पहाड़, और देवताओं को भी बनाता है। जब जीव जागृत होता है तो ईश्वर (देवता, प्रकृति, ब्रह्माण्ड के विभिन्न नाम, आकार एवं अनुभूति) और (जीव) मनुष्य, (जीवन इत्यादि) को बनाता है। परन्तु वस्तुतः चित् (चेतना) ही वह असली तत्व है जो वाकई में अस्तित्व में रहता है - समझे!"

इस प्रकार आनन्द बाबा ने हमें समझाया।

उनको जैविकीय या भौतिक वास्तविकता में कोई सरोकार नहीं था। वे तो चेतनता, इसकी अवस्थाएं, आकार, रीति-रिवाज़ तथा इसके अन्य अर्थों के भाव स्पष्ट करते हैं। बाबा का आग्रह इनकी एकात्मकता स्पष्ट करने पर था। इस तरह वास्तविकता का वर्णन एक प्रकार से इस अवधारणा पर पड़े आक्षेपों से मुक्त करना ही था।

''कुछ लोगों के लिए तो विश्व एक कथा मात्र है - यह उस अजन्मा के द्वारा सृजित होता है जो अकल्पनीय है लेकिन जिसके अवतार और संतान होती है और इस प्रकार पूरी कहानी बनती है। एकात्मकता (अवलोकन) की तो क्या कहानी हो सकती है? तुम्हारी तरह के जो लोग हैं जो बौद्धिक रूप से ब्रह्म पर ध्यान कर सकते हैं और जो समझते हैं कि चेतना पर अज्ञान का पर्दा पड़ा रहता है उनके लिए सांख्य (बौद्धिक

खोज) और विचार (या विवेक) द्वारा इसको समझाना संभव हो सकता है। सिर्फ निरंतर मनन और अन्वेषण से ही कोई साधक उस अद्वितीय सत्ता को समझ कर उसे प्राप्त कर सकता है।''

* * *

एक बार जब हम एक गांव से गुजर रहे थे कि साधु मोटरबाइक पर पास आया और अपने गुरु का निमंत्रण हमें दिया। हम तीनों उसी मोटरबाइक पर बैठ कर चले और एक विशाल आयताकार अहाते में पहुंचे जो तीन तरह तो पट्टीदार शीटों से ढका था। वहां लगभग 50 लोग बैठे थे एक बाबा के सामने जो एक विशाल तख्त पर अपने शिष्यों से घिरे बैठे थे।

''बालकनाथ बाबा'', हमारे सदेंशवाहक ने हमें बताया।

वह एक पीला सा गमछा अपनी कमर के नीचे लपेटे थे। उनकी तोंद स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनका बाकी शरीर तो पतला सा ही था। चेहरा जरा जीर्ण सा था, नाक पर एक फोड़ा भी था, खुला मुंह, बेतरतीब दाढ़ी, तथा उनकी जटाए कंधों तक लहरा रही थी।

''पहाड़ और कगार की क्या तुलना हो सकती है – एक आकाश की ओर ले जाता है और दूसरा नीचे गहराईयों में'' आनन्द बाबा ने उस गुरु के चरणों पर अपना शीश झुकाते हुए अपनी क्षुद्रता बयान की। बालकनाथ बाबा ने उन्हें बीच में ही रोककर खुद झुक कर कहा : ''लेकिन एक का महत्व दूसरे से ही होता है।'' बालकनाथ बाबा ने आनन्द बाबा को अपने पास बैठने का इशारा किया। मैं तो जाकर लोगों के बीच बैठ गया। बात चीत चालू हुई और चिलम भी घूमने लगी ''आप कहां से आ रहे हैं, कहां जाएंगे. ..आपको कुछ चाहिए...इत्यादि।''

इस पटे हुए स्थान के अलावा इस अखाड़े में एक रसोई भी थी और कुछ कमरे भी। बाई तरफ पांच मंजिला मंदिर था जो अभी निर्मित हो रहा था। एक श्वेत मारूति सुजुकी भी वहां मौजूद थी।

आनन्द बाबा और बालकनाथ बाबा का वार्तालाप चल रहा था...मैं सुन रहा था ''ना वासना या वैराग्य से....' गेंहू और सफेद मूली...' 'वास्तविकता कभी भी विचलित नहीं हो सकती...!'

एक युवा व्यक्ति चुपचाप लोगों से गुजरता हुआ आया और मेरे पास बैठ गया। उसका नाम था भगवत् शर्मा। वह आधुनिक अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की तैयारी कर रहा था। उसी ने मुझे बताया कि बालकनाथ बाबा इसी गांव के हैं....वह 9 वर्ष की अवस्था में सब छोड़ के साधु बनने चले गए थे।

'सन् 1997 में वह चालीस साल बाद यहां लौटे। लोगों को उन पर बड़ा विश्वास है।'' भगवत शर्मा ने बताया : ''वह सादा जीवन बिताने के हिमायती है और प्रेम, भ्रातृत्व, शांति, सहयोग और लोगों में आपसी सद्भाव एवं प्रेम की शिक्षा देते हैं। उन्होंने एक कार्यक्रम यहां शुरू करवाया....फरवरी मास में शुक्ल प्रतिपदा के दूसरे दिन दौज

को हमारे गांव में सभी आस पास के गांवो का भंडारा होता है। उनका दावा है कि हमारे पुण्य कार्य इस गांव, 'कवाली', को वाराणसी की तरह पवित्र धर्म-स्थल बना देंगे।''

सब लोगों से कुछ ऊंचे स्थान तख्त पर बैठे बाबा बालकनाथ सभी की बातें सुन रहे थे और चिलम साफ कर रहे थे। उन्होंने अपनी उंगली के बराबर हशिश का एक टुकड़ा तोड़ा और सीधे हाथ पर बैठे एक आदमी को दिया। उस आदमी ने चिलम तैयार की। तभी उसका सैल फोन बज उठा और वह सुनने लगा।

बाबा बालकनाथ गुरु की भूमिका नहीं निभा रहे थे। वह तो उस गांव के संत थे और अपने लोगों के साथ वहां आराम से बैठे थे...लोगों की सामाजिक व्यवस्था सुधार कर उनकी ऐसी मानसिकता बना रहे थे जिससे सब लोग आपस में मिल जुल कर रहें। उनके बायीं तरफ एक फ्रेम में एक फोटो टंगी थी – एक सफेद बालों वाले दाढ़ी युक्त गंभीर वृद्ध की।

'यह इनके गुरु हैं। वे तो अदृश्य भी हो जाते थे और लोगों का उपचार करते थे' भगवत् शर्मा ने मुझे बताया।

'क्या उनके कहने से धूप और वर्षा भी आ जाती थी?' मैंने कनखियों से देखते हुए थोड़ी सी तीखी आवाज में पूछा!

भगवत शर्मा ने शालीनता से बताया : ''गांव के लोग तो सीधे सादे होते हैं पर उनके विचार ऊँचे होते है।, वे जानना चाहते हैं कि क्या उनको या किसी को क्या चीज प्रभावित कर सकती है या किसी का भी किसी पर क्या प्रभाव पड़ेगा।''

वहां लोगों के जमघट में आना जाना तो चलता रहा। गांव के लोग वहां आते, थोड़ी देर बैठते और चले जाते। वे आकर बालक नाथ बाबा और आनन्द बाबा, दोनों का अभिवादन करते थे फिर उनको शिष्यों को भी आदर देते थे – सबके पैर या घुटने अपनी उंगलियों से स्पर्श कर उन अंगुलियों को अपनी आंखों पर लगा लेते थे। फिर वहां एसेम्बली में बैठ कर समाचार पूछते थे। जाने से पहले एकाध नोट सामने डालकर चले जाते थे। एक शिष्य एक महिला को आंगन में बने लिंग तक ले गया। शिष्य ने उस स्त्री के सर पर एक मोर पंख हल्के से फिराया तथा एक मंत्र का सस्वर उच्चारण भी किया।

''यह मूर्ति पूजा नहीं आदर्श पूजा बताता है , ''भगवत शर्मा ने कहा : ''हम कोई भी काम करें उससे समस्त मानवता का भला होना चाहिए सिर्फ हमारा ही नहीं।''

तभी वहां शोर मचाते हुए चार से चौदह वर्ष के बच्चों का एक झुण्ड अचानक आया और मुझे घूरने लगा। शायद उन्होंने कोई गोरा आदमी नहीं देखा था। वे बच्चे मुझसे तरह तरह के प्रश्न पूछने लगे और मेरी प्रतिक्रिया जानने के इच्छुक लगे। वे चाहते थे कि मैं उन्हें दर्शन दूं अर्थात अपनी चेतना से उनको परखूं। मैंने उनमें से हर एक की आंखों में कुछ देर तक निहारा; एक ही साथ सबको देखा बिना किसी को छोड़े हुए।

अंधेरा होते ही उस एसेम्बली हाल में लटके हुए तार पर एक बल्ब जल उठा। वहां उस प्रकाश का स्वागत 'ओम नमः शिवाय : के उच्चारण से हुआ। तभी वहां एक आदमी एल्यूम्यूनियम का एक बड़ा भगौना ले आया जिसमें चार कण्डे जलाए गए। उस समय तख्त पर बैठे पगड़ी धारी सज्जन उन कण्डों के धुएं और चिलमों से उठने वाले धुएं से पूरी तरह से ढक गए थे। लगा मानो इस निस्सार संसार में ईश्वर की छवि उभर रही है जैसी कि मंदिरों के भित्ति चित्रों में उभरती है।

बाद में रसोईये ने हमें खाना खिलाया और एक आदमी हम लोगों को एक कमरे में ले गया जहां गद्दों का ढेर लगा था।

दूसरे दिन सुबह भगवत शर्मा अपने पांच युवा साथियों को लेकर आया, मुझे सारे गांव में घुमाने के उद्देश्य से। फिर मुझे उनमें से किसी एक के कमरे पर ले गया। जहां मुझे गर्म दूध पिलाया गया और बातें भी हुई।

उस कमरे की दीवालों पर प्रसिद्ध युवा क्रिकेटर युवराज सिंह के पोस्टर चिपके हुए थे। कमरे के बाहर एक लाल यमहा खड़ी थी। दूसरी तरफ सड़क के पार दुकान के शटर्स अभी बंद थे। हम लोग एक विशाल तख्त पर बैठे थे जो एक पतली गद्दी से ढका था। वही एक पतला लिहाफ भी रखा था जिसको मोड़ कर उन्होंने मेरा आसन बना दिया था।

''आप साधु क्यों बनें? क्या आप मोक्ष प्राप्ति में विश्वास करते हो?

''बाबा का जीवन स्वयं ही मोक्ष है। मेरे लिए तो साधु होना ही मुक्त होना है।''

मैंने अपने थैले से अष्टावक्र गीता निकाली और पढ़ा

''जो अस्तित्व में है वह जीव में है
यह वह है जो ज्ञात है;
जब कोई कुछ नहीं रहता
तो उसका कुछ नहीं होता।''

''अच्छा है!'' सभी को यह विचार पसन्द आया।

''पर क्या आप इसे जानते हैं?'' भगवत शर्मा ने पूछा

''मैं इस बारे में सोचता तो हूं, पर फिर भुला देता हूं, ''मैंने स्वीकार किया : ''मैं एक नौसिखिया हूं न।''

मेरे मेज़बानों ने एक प्रकार की चिलम बनाई - एक पुरानी बीड़ी को खोलकर उसमें हशिश का टुकड़ा रखा। ''बड़े लोगों के साथ हम युवक ऐसा नहीं करते'' मानो अखाड़े में धुआं न उड़ने का औचित्य सिद्ध कर रहे हों।

'तो यहां क्या सभी धुआं उड़ाते हैं?'

वे जवाब में सब हंसने लगे।

'हां!''

'सब नहीं!''

'सिर्फ आदमी लोग।''

''कुछ तो सिर्फ ताश खेलते हैं।''

'गेंहू तो अपने आप बढ़ता है!''

इस गांव में अगर दो हजार लोग रहते हैं तो मान ले कि आधी स्त्रियां होंगी - लगभग 250 बच्चे जो 16 साल से कम है और 200 वयस्क पुरुष जो ताश ही खेलते हैं। यदि इनको कुल संख्या में से कम किया जाए तो कम से कम साढ़े पांच सौ आदमी ऐसे हैं जो चिलम आदि का नशा करते हैं - लगभग पूरी जनसंख्या के एक चौथाई लोग!'' मैंने गणना की।

''औरतों को नहीं गिना!''

''कभी-कभी वे भांग का सेवन जरूर करती हैं।''

''और ऐसा लगभग हर गांव में होता है?''

''कह नहीं सकता कि हर गांव में ऐसा ही होता है। पर शायद हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश में ऐसा ही होता होगा - यही हाल उत्तर प्रदेश और बिहार के हिन्दू इलाकों में भी होगा।

यानी लगभग बीस करोड़ लोग।

हमने फिर जेनेटिकली मॉडीफाईड चावल की बात की और मोनसेन्टो की आधुनिक ट्रिक के बारे में भी चर्चा की। ''जहां तक कानून का सवाल है इनके बीज निष्क्रिय तो नहीं रहते परन्तु यदि एक साल पुराने चावल का बीज डाला जाए तो वह नहीं जमता'', एक ने कहा। दूसरे ने कहा :''हम बीस प्रतिशत फसल को ऐसे ही नहीं गंवा सकते।'' इनमें से एक के पिता, एक अमेरिकन भैंस खरीद लाए थे। पानी की कोई कमी नहीं थी। कई वर्षों तक बढ़िया फसल हुई।

फिर उन लोगों ने मुझे गांव की सैर कराई : पथरीली गलियां, छोटे-छोटे मकान, खुला अहाता जिसमें दीवारों पर कण्डे सूखते हुए। एक विवाह हॉल से भी गुजरे - एक बढ़ई की दुकान, एक अछूत का कच्चा घर, प्लास्टिक की शीटों से बने घर तथा एक तालाब जिसमें वाइट लिली उगी थी। एक छांव में स्वर्गीय बाबा का स्थल था जिसमें फोटो के उपर मालाएं लगी थी - वह उनकी समाधि थी। ''मृत्यु के बाद इन सबको हम पवित्र संतों की तरह का सम्मान देते हैं।'' भगवत शर्मा ने फुसफुसाया, ''लेकिन जीवन काल में उन्हें हम सिर्फ संत ही मानते हैं।' फिर मंदिर के सामने हमें एक पुजारी दिखा : ''यह मंदिर का कार्यकर्ता है, अराधना की नौकरी करता है। बालकनाथ बाबा एक संत है।'' नाई की दुकान तो खुद ही एक अखाड़ा लग रही थी जहां हंसी मजाक और बहसे होती रहती थीं। पर न मुझे उनकी बातचीत समझ में आई न उनका खेल। पर हर आदमी मस्त लग रहा था।

यहीं पर मुझे रोहिताश शर्मा मिला - गणित का शिक्षक - एक रहस्य बताने के लिए वह मुझे खींच कर कोने में ले गया - अपने खेतों तक - जहां उसने मुझे बताया कि वह समझता था कि यह बाबा लोग झूठे बदमाश होते हैं। लेकिन वह अखाड़े में

जाता रहता है। एक दिन बालकनाथ बाबा ने मुझे 20,000 रुपए देकर कहा : 'इनके बारे में कभी ज़िक्र मत करना जब तक मैं न तुम से पूछूं।'

'मैं तब बहुत गरीब था। जिसने कभी हजार रुपए न देखे हो, उसके लिए 20,000 रुपए तो बड़ी रकम थी। फिर मेरे भाग्य ने साथ दिया और मैं साल भर में ही लाख रुपए से ज्यादा कमाने लगा।''

''अच्छा!'' मैंने चकित होके कहा। यानि कि गांव के संत लोग अपने लोगों की आर्थिक समृद्धि के लिए भी गुप्त रूप से काम करते रहते हैं। यह बात मैं पहले से कतई नहीं जानता था।

गणेश शर्मा ने तभी खेत से एक मूली उखाड़ी और धोकर मुझे दी। तब उसने मुझे अपना राज बताया। एक बार मैं शाम को अखाड़े पहुंचा। मेरे साथ तीन लोग और थे. ..बालकनाथ वहां बैठे-बैठे आग सुलगा रहे थे। वे बहुत गुस्से में थे। घर जाओ, वे चिल्ला कर बोले...चेहरे पर गुस्सा स्पष्ट था। और उन्होंने स्वयं को कमरे में बंद कर लिया। हम लोग उनके कमरों के सामने ही रहे। यद्यपि उधर से तो नहीं पर हमने उनको सड़क के पीछे से आते हुए देखा।

'वाह! पुराने गुरु अदृश्य हो जाते थे...और नए गुरु चुपचाप दीवारें भेद कर निकल आते हैं। यह एक रहस्य क्यों है?'

यदि मैंने यह बात किसी और को बताई तो कोई मेरा विश्वास नहीं करता!

हालांकि इस करिश्मे के चार चश्मदीद गवाह थे, पर मुझे इसका भरोसा नहीं हुआ। बालकनाथ बस क्यों अदृश्य होकर निकलेंगे और दृश्यमान हो कर लौटेंगे? ऐसे चुपचाप तो दीवारों से कोई भेद नहीं निकल सकता।

* * *

मेरी आनन्द बाबा से फिर मुलाकात खेतों में ही हुई। वहां ईंटे के बने मोटर पम्प हाउस का समूह था। मोटर पम्पों के साथ कंक्रीट के टैंक बने थे। हम वहीं एक मूँज की खाट पर जाकर बैठ गए। खेतों के चारों तरफ नालियां बनी थी पानी देने के लिए जिसके अनुसार जरूरत का पानी दिया जा सकता था।

वहां हरीतिमा और बन अजवाइन की तीखी गंध चारों ओर फैली हुई थी - दूर चिड़ियों की चहचहाहट भी सुनाई पड़ रही थी और पास में भँवरों इत्यादि की भनभनाहट। हरी भरी गेंहू की बालियां आंखों को चैन दे रही थीं।

''बाबा, आपके पुराणों के अनुसार सृष्टि की शुरुआत कैसे हुई थी?''

'तत्सष्टिव तद् इवनुप्रविस्तात् - यह तेरी उपनिषद का कथन है : ''ब्रह्माण्ड को प्रक्षेपित कर वह स्वयं इसमें समा गया''। इसीलिए उसे विश्वम् या 'सब कुछ' कहा जाता है।'' आनन्द बाबा ने समझाया।

''वह है कौन?''

मानो निस्तब्ध होकर गेंहू की बालियां भी यह वार्तालाप सुन रही थीं। लाल नीले-क्षितिज से लगभग पूरा चांद उभर रहा था।

''प्रश्न उपनिषद कहता है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा को सृजन की इच्छा हुई - उन्होंने इसके लिए पूरा ध्यान किया और पहला जोड़ा बनाया : 'रश्मि और प्राण या पदार्थ एवं उर्जा, फिर चांद-सूरज, भोजन और उसे खाने वाला। शुरुआत तो दो से ही हुई थी।''

''और सृष्टा को कौन बनाता है?''

'आत्म अकेला था। उसके प्रथम शब्द थे : 'एकोऽम्...परन्तु एकाकीपन में कोई मजा नहीं था। वह किसी और को जानता ही नहीं था। इसलिए उसने दो होने की कामना की। दूसरा उसकी इच्छा का प्रतिरूप था जिसने अनेकों रूप धारण किए।''

''इस आत्मा को किसने बनाया जो एकाकीपन सहन नहीं कर सकी?''

मानो सूरज भी क्षितिज पर थोड़ा नीचे झुक आया था हमारी बातचीत सुनने के लिए...''यह सब कुछ ही ब्रह्म है...तुम भी वही हो...हां ..तुम प्रसाद जी...वही सर्जक हो..सृष्टा के भी सर्जक! तुम्हीं यह ब्रह्माण्ड बना कर स्वयं इसमें समा जाते हो...तुम ही सूरज चांद भोजन एवं उनको खाने वाले को बनाकर अपनी इच्छा के प्रतिरूप ढालते रहते हो।''

''हर एक में अपना ही प्राकट्य समझने के भाव को हमें बेहद सहृदय बनाना चाहिए, बाबा जी।''

बाबा जी बड़ी जोर से हंसे। पास से फट-फट करता एक ट्रैक्टर गुजर गया। एक लड़का साईकिल पर बैठा अपने पम्प को जाता दिखा। दूर क्षितिज के पास एक बैलगाड़ी धीरे धीरे जा रही थी। सूर्य छिपने लगा और अंधकार ने सभी को ढकना प्रारंभ कर दिया।

''और - गुरु जी, आपका अपना क्या विचार है...कि प्रारम्भ कैसे हुआ?''

''अज्ञान अनादि है क्योंकि अज्ञान ने ही समय का सृजन किया है।'' उन्होंने कहा। ''विश्व के प्रक्षेपण के पूर्व तो ब्रह्म अकेले ही मौजूद था। माया ने उससे ईश्वर और विश्व का निर्माण कराया और इसके बाद वह जीवन (जीवन यानी मैं, यानी वह जो विषय-वस्तु का कारक है) के रूप में इसमें प्रवेश कर गया। जीव तबसे ईश्वर का आराधक हो गया।

'लेकिन जीव में अपनी प्रकृति जानने की कामना बलवती हुई। ऋषियों ने अपनी सतत साधना और ध्यान से पाया कि माया की धारणा तो बाद में पैदा हुई, उसके पूर्व तो मात्र आत्मा (या स्व का रूप) ही थी (यानी भेद-बुद्धि रहित चेतना)।

'इस चेतना को, जो अपनी प्रकृति में निरंतर वास करती रही, ऋषि गणों ने मोक्ष या मुक्ति का नाम दिया। दूसरी चेतना जो पराधीनता से पैदा हुई, को संसार (जन्मों की जगह) तथा माया (भ्रम, गलत समझ) कहा गया। पराधीनता का भाव जागरूकता की कमी का घोतक होता है। इसीलिए जागरूकता बढ़ने से यह भाव स्वत: तिरोहित हो जाता है। विशुद्ध चेतना में विषय स्वयं ही एक दूसरी वस्तु है। अर्थात : ''सोऽम्! (मैं वही हूं)

'इसी के साथ आत्मा जो है वह अहम, मस्तिष्क, इन्द्रिय बोध एवं उनके विषय का वह बोध है जो सबको समेकित रूप में देखता है।'

''मानसिक क्रिया के दो प्रकार होते हैं – बाह्य एवं आंतरिक। आंतरिक प्रकार 'मैं' का स्वरूप ले लेता है और बाह्य स्वरूप 'उस' का जिससे आत्मेतर वस्तुओं का बोध होता है। बाह्य वस्तुओं का बोध पांच इंद्रिय एवं मानसिक अनुभूति से होता है।

''वह चेतना जो दृष्टा, दृष्ट और दृष्टि को एक साथ अनुभव कर लेती है उसे साक्षी या साक्षी बोध (या तुरीयावस्था) कहा जाता है।

''वस्तुएं तो शरीर के बाहर होती हैं पर अहम् अन्दर होता है। लेकिन यह अर्न्त–बाह्य का बोध तो शरीर पर ही होता है। आत्मपरक या साक्षीपरक नहीं होता!''

आनन्द बाबा इस प्रकार मुझे एक ऐसे शब्दों, अर्थों के जंगल में ले गए जहां एक ही शब्द के असंख्य अर्थ निकलते हैं – यथा चेतना, बोध और अनुभव। उनका सारा स्पष्टीकरण तीन अवस्थाओं पर आधारित था : जागरण, स्वप्न और गहन निद्रा। एक अन्य बात उन्होंने बताई; जो तीनों की साक्षी होते हुए भी तीनों से परे थी, जो सदैव जागरूक रहती है, अपरिवर्तनीय है, सर्वत्र है और मात्र होने के आवरण से अवगुण्ठित रहती है – वह है ईश्वरीय साक्षी भाव।

''स्वप्न में चेतना वस्तु से अलग नहीं होती। इसी तरह यह विश्व मात्र अव्यक्त ब्रह्म का अपरिवर्तित रूप ही है। जैसे नींद में चेतना इस स्थिति से अवगत नहीं रहती। परन्तु जागरण में अनुभूति बदलती रहती है – विचार आते जाते रहते हैं परन्तु चेतना का बोध वही रहता है। इसी प्रकार माया के आडम्बर में ब्रह्म अपरिवर्तित रहता है चाहे माया कुछ भी प्रक्षेपित करे। वास्तविकता वस्तुत: एक छलावा है। मुख्य चेतना वही ब्रह्म है। ऐदत् अथभ्याम इदम् सर्वम' – जो आत्मा है वही बह्म है! समझे!''

''सरस्वती बाबा तो इसी चेतना को मानते हैं और तलाश करते हैं – वही जो दिमाग की सारी अन्त: अनुभूति का एक मात्र साक्षी है।''

''अच्छा!''

उस दिन अष्टावक्र गीता ने मुझे क्या बताया :

''समझो कि चीजों के आकार भी चीजें ही हैं, वास्तविक कुछ नहीं है। इसी क्षण की समझ में तुम सारे बन्धनों से मुक्त होकर अपनी वास्तविक प्रकृति हो जाओगे। (9,7)

मैं उस स्थिति में पहुंचा था, पर एक क्षण मात्र के लिए।

दो दिन बाद हम फिर आगे चल दिए।

मुलाकातें

भ्रमण करते हुए हम एक गांव से दूसरे गांव पहुंचते रहे – पगडंडियों, रास्तों से गुजरते हुए जो छोटे–छोटे फार्मों, प्लॉटों नन्हें मंदिरों के बीच से निकलते लगते थे। हमने अपोलो के शरीर में बने कांसे के शिव के भी दर्शन किए – कैलाश पर्वत पर आसीन। ओम् महायोगी! और एक प्रस्तर के अवतार के भी जो हाथ में धनुष थामे थे – ओम श्री राम! चतुर्भुजी सुनहरे विष्णु को भी – हरी ओम् नारायण! हम ऐसी मूर्तियों के सामने साष्टांग प्रणाम करते रहे जिनमें कई आकार उभरे थे – मानव सहश चेहरे – चरणों पर सांप के आकार – पेड़ों के नीचे! ओम् नारायण ! एक संत के चरणों में भी हम नत हुए – ओम् महाराज गुरु।

जिस प्रकार कपड़े में शुरू से आखिर तक एक ही धागा बुना हो
उसी प्रकार स्वयं को समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त समझो। (ज्ञानेश्वरी)

रास्ते में घुटनों तक साड़ियां मोड़े पानी में धान रोपतीं–बीनती कई स्त्रियां भी दिखीं। हरि राम राम! नंगे बच्चे धूल भरी राह पर खेलते हुए। लंगोटी लगाए पतले दुबले लोग नंगे पैर घूमते हुए। गांवों में खपरैलों में पीं–पीं करती एक बड़ी सफेद कार भी दिखी, लोगों को हटा कर अपना रास्ता बनाती हुई – उसमें एक भारी भरकम चेहरे वाला चश्मा लगाए एक बाबू बैठा था। जब वह कार निकली तो एक धूल का बड़ा गुबार छोड़ गई। कहीं–कहीं मुर्गियां, बकरियां, गाएं, एक छोटी सी सड़क पर बनी रसोई – एक बगीचा – फूलों को कतारों वाला भी दिखा...! कहीं माताएं जमीन खोदती हुई तरकारी/सब्जियां छीलती हुई कहीं बच्चे की सफाई करती हुई...भैंसों का दूध दुहती हुई...अपने बाल बनाती हुई और हमें देखकर मुस्कुराती हुई....'ओम् नम: शक्ति!' 'हरि ओम् माता!' छोटी–छोटी लड़कियां अपनी मांओं के काम में हाथ बटाती हुई – अपने छोटे भाईयों को लादे हुए – गाय की सानी करती हुई – दालें बीनती हुई – गोबर के कण्डे पाथती हुई – पेड़ों की शाखाओं पर झूलती हुई – मानो कृष्ण के काल की छवि दे रही हों। हरि कृष्ण।

अपनी गरिमा – शान से वह उदासीन
मूल्यवान या दरिद्र में कोई भेद नहीं करता
सभी को एक समान समझता हुआ
सभी के सामने नतमस्तक होता है। (ज्ञानेश्वरी)

और इस प्रकार हर दिन हमारे नए टकराव या मुलाकातें होती रहीं।